पुरातत्त्व का मिथक व मिथक का पुरातत्त्व

पुराना क़िला

आनंद विवेक तनेजा

एक 'आधुनिक' शहर के मौजूदा भूगोल में किसी स्मारक, किसी नज़राख़ेज़ खंडहर के क्या मायने हैं?
यह माज़ी को हमारे सामने कैसे पेश करता है?
और प्रस्तुति की इस प्रक्रिया में क्या है जो हमारी नज़र से ओझल हो जाता है?

पुराने क़िले के बारे में मैंने पिछले दिनों कुछ तफ़तीश की थी। यह लेख उसी सिलसिले में उभरे कुछ ज़ाहिरा सवालों के जवाब पेश करने की एक कोशिश है। मगर सवालों की चीरफाड़ से बढ़कर यह पर्चा एक-दूसरे को काटते हमारे इतिहासों व एजेंडा के एक जाल की तरफ़ इशारा करता है जो एक स्मारक के काल और परिवेश के चेहरे पर आड़ी-टेढ़ी लकीरें खींचता जा रहा है। एक ऐसा जाला जिसको सुलझाने की क़वायद अभी बमुश्किल शुरू ही हुई है। इस पर्चे में मैंने साहित्यिक और स्थैतिक लिहाज़ से अतीत की निर्मिति को देखने की कोशिश की है, यानी मैंने एक स्थान विशेष की पुरातात्त्विक खुदाई और इस जगह के साथ जुड़े दैनंदिन क्रियाकलापों पर नज़र डालने की कोशिश की है। मैंने अपने अनुसंधान के दौरान संरक्षण आंदोलन और ऐतिहासिक विरासत की अवधारणा के मुताल्लिक़ जिस तरह की समस्याओं को महसूस किया, यहाँ मैं उन्हीं को दर्ज करने की कोशिश कर रहा हूँ।

I. अतीत की नक़्शानवीसी

जब मैं लखनऊ में प्राथमिक पाठशाला में पढ़ता था तो हम चित्रमाला से जीव-जंतुओं, प्राकृतिक संसाधनों, राष्ट्रनायकों, राष्ट्रीय पोशाकों, राष्ट्रीय पर्वों आदि आदि की जलरंगी तस्वीरें काटकर अपनी समाज विज्ञान की कॉपियों में चिपकाया करते थे। ये चित्रमालाएँ नज़दीक की स्टेशनरी दुकान पर आसानी से उपलब्ध थीं। उनमें से

'हिंदुस्तान की ऐतिहासिक इमारतें' नामक चित्रमाला मुझे आज भी अच्छी तरह याद है। तरह-तरह की इमारतों से भरी यह चित्रमाला एक लम्बी-चौड़ी शृंखला का हिस्सा थी जिसके कई दिलचस्प नमूने हमने देखे हैं। उसमें एक चित्रमाला का शीर्षक 'मुग़ल काल' था (जिसकी शुरुआत मोहम्मद ग़ोरी के एक पासपोर्ट साइज़ फ़ोटो के साथ होती थी) तो दूसरी का 'हिंदू काल'। ये चित्रमालाएँ इंडियन बुक डिपो, बहादुरगढ़ रोड, दिल्ली से निकलती हैं और अगर मेरे स्कूली दिनों से अब तक हालात में कोई बड़ा बदलाव न आया हो तो मेरा ख़याल है कि उत्तरी भारत के कई इलाक़ों में विद्यार्थी आज भी इन तस्वीरों को काटकर अपनी समाज विज्ञान की कापियों में चिपका रहे होंगे। 'भारत की ऐतिहासिक इमारतें' चार्ट में चौबीस इमारतें हैं। इस चित्रमाला की शुरुआत बिरला मंदिर, नई दिल्ली के साथ होती है और यह लाल बहादुर शास्त्री की समाधि विजय घाट पर जाकर ख़त्म हो जाती है। ये दोनों स्मारक दिल्ली में हैं। बल्कि मुकम्मल तौर पर देखा जाए तो 24 में से 15 इमारतें दिल्ली की ही हैं जिनमें गुरुद्वारा शीशगंज, संसद भवन, साउथ ब्लॉक, नॉर्थ ब्लॉक, जामा मस्जिद, पुराना क़िला, लाल क़िला, कुतुबमीनार, जंतर-मंतर, इंडिया गेट, हुमायूँ का मक़बरा, राजघाट और शांति वन भी शामिल हैं। इस फ़ेहरिस्त में मुग़ल काल से पहले के सिर्फ़ दो स्मारक हैं — कुतुब मीनार और साँची का भव्य स्तूप। विंध्य के दक्षिण में स्थित भू-भाग की क़िस्मत भी कुछ ऐसी ही है। वहाँ के सिर्फ़ दो स्मारकों को इस चित्रमाला में जगह मिली है। गेटवे ऑफ़ इंडिया और चारमीनार, दोनों ही विश्व प्रसिद्ध स्मारक हैं और इन्हें चित्रमाला में जगह दे दी गई है। देश के पूर्वी हिस्से से सिर्फ़ हावड़ा ब्रिज ही इस चित्रमाला में जगह पा सका है। पश्चिमी भू-भाग से चित्तौड़गढ़ का विजय स्तम्भ इस चित्रमाला में सिर उठाए खड़ा है। मगर इंडियन बुक डिपो द्वारा छपी और उत्तर भारत के करोड़ों छात्रों के ज़ेहन पर कटती और सटती इस चित्रमाला के मुताबिक़ देश का इतिहास कुल मिलाकर दिल्ली में ही बसता है और वह भी साम्राज्यवादी नक़्शों में, चाहे फिर वह मुग़लकालीन हो या फ़िरंगियों के ज़माने का। शायद यह महज़ इत्तेफ़ाक़ नहीं है कि चित्रमाला की क्षैतिज और लम्बवत् क़तारों में पुराना क़िला बीचोंबीच — या तक़रीबन बीचोंबीच — सिर उठाए खड़ा है।

आज जो पुराना क़िला आप देखते हैं यह सोलहवीं सदी के मध्य में बना था। यह इमारत हुमायूँ और शेरशाह के छोटे से मगर उथल-पुथल भरे शासनकाल की गवाह है। और 'सरकारी' इतिहास की पोथियों में तो कम से कम उसी सदी के अंत से इसे पांडवों और महाभारत के साथ जोड़कर देखा जाने लगा था।[1] तक़रीबन एक सदी पहले, 1911 में दिल्ली को ब्रिटिश भारत की नई राजधानी बनाने की जद्दोजहद में मुब्तिला लॉर्ड हार्डिंग ने लिखा था; 'दिल्ली अभी भी एक मायावी नाम है। हिंदुओं के दिलोदिमाग़ में यह नाम बहुत सारे ऐसे पवित्र प्रतीकों और किंवदंतियों के साथ जुड़ा हुआ है जो इतिहास के प्रारंभ बिंदु से भी पुराने हैं। दिल्ली के मैदानों में ही पांडव राजकुमारों ने कौरवों के साथ एक भीषण युद्ध लड़ा था जिससे अंततः महाभारत की रचना हुई। और यमुना के तट पर ही पांडवों ने वह प्रसिद्ध यज्ञ किया था जिसमें उनकी ताजपोशी हुई थी। पुराना क़िला आज भी उसी जगह आबाद है जहाँ उन्होंने इस शहर की बुनियाद डाली थी और इसे इंद्रप्रस्थ का नाम दिया था। यह आधुनिक दिल्ली शहर के दक्षिणी दरवाज़े से बमुश्किल पाँच क़िलोमीटर दूर पड़ता है। मुसलमानों के लिए भी यह अप्रतिम गर्व की बात होगी कि मुग़लों की प्राचीन राजधानी को हमारे साम्राज्य में ऐसा गौरवपूर्ण स्थान मिले।'[2]

शाहजहाँनाबाद के मैदानी दक्षिणी इलाक़े के बारे में उन्नीसवीं शताब्दी के आख़िरी और बीसवीं शताब्दी के शुरुआती सालों के ब्योरों में इसे आमतौर पर 'भुतहा और मनहूस मक़बरों का वीरान शहर' ही कहा गया है।[3] उन ब्योरों में यह मिट्टी में मिल चुके राजवंशों का ओज़ीमंडियानुमा खंडहर भर था। साम्राज्यवादी नज़र को अपने उपनिवेश के इस इलाक़े में मौत और तबाही का मंज़र भर दिखाई देता था जबकि उन्हें अपनी सभ्यता के रास्ते में ऐसा कोई ख़तरा दिखाई नहीं देता था। उनकी नज़र में उनके साम्राज्य के तहत होने वाली तमाम घटनाएँ इतिहास की एक सतर लकीर का हिस्सा थीं। इतिहास की इस रैखिकीयता में इन खंडहरों का समावेश नज़रिए में बदलाव की तरफ़ इशारा करता है। अपने बदरंग इतिहास की वजह से 1911 से पहले पुराना क़िला वॉल्ड सिटी से दो मील की दूरी पर दिल्ली के खेत-क्यारियों के बीच एक चौहद्दी से घिरे दो हज़ार से भी कम की आबादी वाले गाँव से ज़्यादा हैसियत नहीं रखता था। मगर महज़ कुछ अर्सा बाद, 1919 में पुरातात्त्विक सर्वेक्षण विभाग ने दिल्ली के स्मारकों की 'ज़फ़र हसन फ़ेहरिस्त' तैयार की और उसमें लिखा कि 'नई राजधानी की

रूपसज्जा में इस दुर्ग का एक ख़ास महत्व है क्योंकि यह गवर्नमेंट हाउस से पूरब को निकलने वाली शाह राह पर दो मील दूर स्थित आख़िरी मुक़ाम है। क़िले और मुख्य भूमि के बीच झील बनाने या इसके इर्द-गिर्द नदी निकालने की जो तजवीज़ें पेश की गई हैं अगर उन्हें अमल में लाया जाए तो यह हिंदुस्तान की सबसे दिलकश इमारतों में शुमार हो जाएगा'।[4] और इसको अमली जामा पहनाने के लिए 'दिल्ली को राजधानी बनाने के बाद उसकी ऐतिहासिक इमारतों के सौंदर्यीकरण के लिए नागरिक अधिकारियों द्वारा किए गए ढेर सारे उपायों में सबसे महत्वपूर्ण क़दम था पुराना क़िले में बसी गंदी बस्तियों को हटाने का...। मार्च 1913 में घरों को अधिग्रहीत कर लिया गया और उनमें रहने वाले 1900 बाशिंदों को कहीं और भेज दिया गया। इनमें से कुछ मुख्य शहर की तरफ़, कुछ रोहतक, कुछ बुलंदशहर और कुछ गुड़गाँव ज़िले की तरफ़ निकल गए...। 1913-14 में गाँव की झोंपड़ियों को भी वहाँ से हटा दिया गया और क़िले के अंदरूनी हिस्से को चारों तरफ़ से बंद उद्यान की शक्ल दे दी गई...।'[5]

'ज़फ़र हसन फ़ेहरिस्त' के नाम से मशहूर स्मारकों की सूची में दिल्ली के तमाम स्मारकों को अलग-अलग श्रेणियों या दर्जों में रखा गया था। इनमें एक श्रेणी ऐसे स्मारकों की थी जिन्हें ऐतिहासिकता या ख़ूबसूरती की बिना पर बनाए रखना ज़रूरी था जबकि एक श्रेणी में ऐसे स्मारक थे जिन्हें ज़रूरत पड़ने पर नष्ट किया जा सकता था।[6] यह साम्राज्य के पैर पखारता पुरातत्त्व था। यह पुरातत्त्व इस बात का हर मुमकिन इंतज़ाम करता जा रहा था कि आने वाले दौर में इस शहर को किस तरह पढ़ा जाएगा। यदि फ़ूको के शब्दों का सहारा लें और ये कहें कि परम्परागत इतिहास ने अतीत के स्मारकों को 'याद रखने', उन्हें दस्तावेज़ों में रूपांतरित कर देने[7] का बीड़ा उठा लिया था तो हमें ये भी कहना पड़ेगा कि नए शहर के नियोजन के लिए दस्तावेज़ीकरण या अभिलेखकरण में भी ख़ास मंसूबे साफ़ दिखाई देते हैं। ज़फ़र हसन फ़ेहरिस्त में स्मारकों की गणना गाँव की ज़मीन की परम्परागत सीमाओं को ध्यान में रखते हुए की गई है। कम से कम इंदरपत गाँव के मामले में उसने भूतपूर्व साम्राज्य के विराट चिन्हों को बनाए रखने की पूरी कोशिश की। छोटी-छोटी 'लोकप्रिय' इमारतें — मंदिर, पूजा-अर्चना का केंद्र बन चुकी क़ब्रों और इस तरह की चीज़ों को क्लास थ्री की रेटिंग दी गई। मगर हैरत की बात यह है कि इंदरपत की बहुत सारी क्लास थ्री इमारतें फिर भी सुरक्षित रह गईं। मटका पीर भी इन्हीं इमारतों में से एक था। यहाँ की इन इमारतों या मटका पीर के बचे रह जाने की शायद एक वजह यह थी कि नए शहर की मूल योजना में इस इलाक़े में किसी तामीर का इरादा था ही नहीं। उल्लेखनीय है कि दिल्ली के स्मारकों की आईएनटीएसीएच (इंटैक) सूची में भी उसी वर्गीकरण का इस्तेमाल किया गया है जिसका ज़फ़र हसन फ़ेहरिस्त में किया गया था।

II. विभाजन

तय नक़्शे के मुताबिक़ बनाए गए नई दिल्ली शहर में सन् 1947 तक पुराने क़िले के सबसे नज़दीक पड़ने वाली इमारत लेडी विलिंगडन का स्टेडियम था जिसे किंग्सवे के आख़िर में बनाया गया था। हालाँकि मूल योजना में यह रास्ता यानी किंग्सवे पुराने क़िले पर ही जा कर ख़त्म होता था मगर बाद में इसे थोड़ा सा पहले ही ख़त्म कर दिया गया। लेडी विलिंगडन स्टेडियम के अलावा उस ज़माने में पुराने क़िले के सबसे नजदीक पड़ने वाली रिहाइशी बस्ती के नाम पर पुराना क़िला रोड और सुजान सिंह पार्क में रहने वाले अफ़सरों के कामचलाऊ तम्बू थे और उनके बाद बस्ती निज़ामुद्दीन पड़ती थी। क़िले के इर्द-गिर्द ज़्यादातर जंगल-झाड़ियाँ थीं और उसके बग़ल से मथुरा रोड गुज़रती थी।

आज़ादी मिलने के तीन हफ़्ते बाद, 5 सितम्बर को दिल्ली में चल रही हिंसा की छिटपुट वारदातों ने भयानक दंगे और कत्लोग़ारत का रूप ले लिया। सबसे बुरा असर उन इलाक़ों पर पड़ा जहाँ 'मिली-जुली' आबादी रहती थी। करोल बाग़, सब्ज़ी मंडी, सदर बाज़ार, फ़तेहपुरी और पहाड़गंज में सबसे ज़्यादा मारकाट मची। लोदी रोड कॉलनी के वाक़यों के बाद नई दिल्ली में पहली बार कर्फ़्यू लगाया गया। पुराने क़िले और हुमायूँ का मक़बरा में बने शरणार्थी शिविरों में काम करने वाली बेगम अनीस किदवई के मुताबिक़ दंगा शुरू होने पर मुसलमान भाग-भाग कर पुराने क़िले में जमा होने लगे और यहाँ रातोंरात शरणार्थी शिविर खुल गया। उन्होंने लिखा है, 'पुराना क़िला शरणार्थी शिविर किसी योजना के तहत नहीं खुला था। पहाड़ गंज, करोल बाग़, शैदपुरा, सब्ज़ी मंडी और दूर-पास

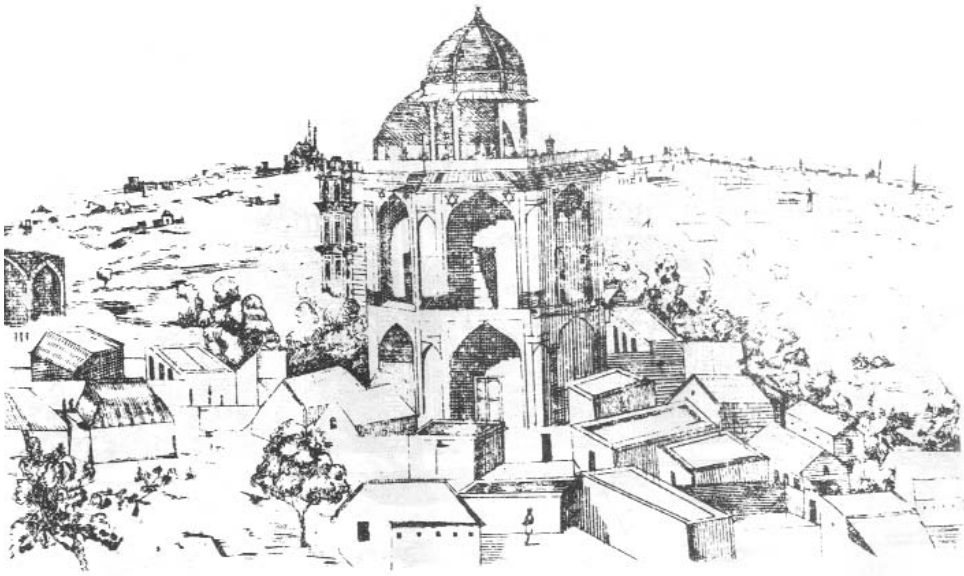

के तमाम इलाक़ों के जख़्मी, बीमार, बूढ़े, बच्चे व औरतें दिन-रात भाग रहे थे। भूख-प्यास के मारे ये लोग पगलाने की ज़द पर पहुँच चुके थे। नज़दीक ही एक पहाड़ी पर मटके शाह की दरगाह थी। मुमकिन है यहाँ ऐसे ही किसी दिन के लिए लोगों ने मटके इकट्ठा कर रखे थे...। जब 5 सितम्बर को बलवा शुरू हुआ तो भागने वालों को ये मटके बड़े काम आए...। मटके शाह के रखवालों ने हर माँगने वाले को मिट्टी के ये घड़े थमा दिए...। इनसे लोगों ने पानी पिया और जब राशन मिलने की बारी आई तो इन्हीं मटकों को तोड़कर उन्होंने तश्तरियाँ बना लीं और उन्हीं में खिचड़ी-तरकारी पका लिए। मटकों के टुकड़ों को लोगों ने गिलास और कटोरियों की तरह इस्तेमाल में ले लिया...।'[8]

अनीस किदवई के संस्मरणों में इन राहत शिविरों की दुर्दशा का बड़ा तफ़्सीली ब्योरा मिलता है। उन्होंने बताया है कि इन शिविरों में ज़रूरत भर राशन नहीं था, भ्रष्टाचार का बोलबाला था और सितम्बर की भारी बरसात से बीमारियों की लहर सी आ गई थी। रही-सही कसर क़िले की झाड़ियों में छिपे साँपों ने पूरी कर दी। कई लोग उनके शिकार बने। अनुमान लगाया जाता है कि तक़रीबन तीन माह तक चले पुराना क़िला शिविर में 60,000 लोग थे और सितम्बर में तो इन लोगों की तादाद 80,000 तक थी।[9] इस राहत शिविर के बारे में मुकुल केशवन ने लिखा है, "पहले तीन दिन तक बरसात की वजह से फूल कर पानी में तैरने लगे गोबर के ढेरों से निजात का कोई रास्ता नहीं था। हर तरफ़ गोबर और टट्टी की सड़ांध थी...। चौथे दिन तक एक घृणास्पद सामान्यता तारी हो गई चूँकि मैले के अनगिनत प्रतिरूप पैदा होने लगे। किसी भी इंसानी बस्ती की तरह यहाँ भी ज़िंदगी ने ज़िंदगी को पैदा करना शुरू कर दिया था। किसी भी इंसानी बस्ती की तरह यहाँ भी ज़िंदगी का कारवाँ नए सिरे से शुरू होने लगा था...। पाँचवें दिन, यानी पीने के पानी का इंतज़ाम होने या सिपाहियों के पड़ाव डालने से भी पूरे चौबीस घंटे पहले यहाँ सूचियाँ तैयार करने वाले काउंटर खुल गए। पिता/पति का नाम; लिंग; बच्चे; आवास; गृह नगर; पंसद की राष्ट्रीयता..... की आवाज़ें गूँजने लगीं।"[10] सबसे भयानक विडंबना का शिकार मौलवी ज़फ़र हसन बने जिन्होंने ज़फ़र हसन फ़ेहरिस्त के ज़रिए क़िले के भीतरी इलाक़े से इंदरपत गाँव के सफ़ाए की तजवीज़ पर दस्तख़त किए थे। पाकिस्तान की तरफ़ कूच करने से पहले उन्हें मजबूरन इसी क़िले में शरण लेनी पड़ी।[11]

1976 के *दिल्ली गज़ेटियर* के मुताबिक़, "1947 में देश विभाजन के बाद दो लाख से ज़्यादा मुसलमान पाकिस्तान चले गए। दिल्ली में मुसलमानों की संख्या 1941 तक 3,04,971 थी जबकि 1951 में उनकी संख्या महज़ 99,501 यानी 2,05,470 कम रह गई थी।"[12] आँकड़ों की नज़र से देखें तो जिस दौरान यह कैम्प चला

उस दरमियान किसी भी मौक़े पर दिल्ली की तक़रीबन 20 प्रतिशत मुस्लिम आबादी, जिनमें ज़्यादातर शहरी आबादी थी, और जिनमें से बहुत सारे जल्दी ही पाकिस्तान जाने वाले थे, पुराना क़िला में थी। मगर 1947 के सितम्बर में पुराने क़िले को नक़्शे से बेदख़ल कर दिया गया। अगर आप *हिंदुस्तान टाइम्स* के दिल्ली संस्करण के पाठक रहे हैं तब तो आपको ज़रूर यही लगेगा। उस दौर के अख़बार मुसलमानों से भय और उनके प्रति अविश्वास से भरे पड़े थे। पश्चिमी पंजाब पुलिस और सैनिक अधिकारियों द्वारा वहाँ से हिंदुस्तान की तरफ़ निकलने की कोशिश कर रहे शरणार्थियों पर किए गए अत्याचारों की कहानियाँ, अपने रिश्ते-नातेदारों की तलाश में भटकते और पश्चिमी पंजाब से आए शरणार्थियों के जत्थों की ख़बरें इन अख़बारों में सबसे ऊपर और स्वाभाविक रूप से सबसे प्रमुख थीं। पुराने क़िले के आसपास पहुँचने वाली ख़बर दिल्ली के अंग्रेज़ीभाषी नागरिकों में मुसलमानों (Meos) को लेकर पैदा हो रहे भय और अविश्वास से संबंधित थी। मेओ मुसलमान भी अलवर और भरतपुर की रियासतों में हिंसा का निशाना बनने के बाद वहाँ से भाग कर निज़ामुद्दीन के आसपास इकट्ठा हो गए थे। *हिंदुस्तान टाइम्स* में यदा-कदा पुराना क़िला के जो ज़िक्र आए हैं उनमें एक अंक 10 सितम्बर का भी है। 10 तारीख़ यानी दंगे शुरू होने के 5 दिन बाद महात्मा गांधी कलकत्ता से दिल्ली पहुँचते हैं। उस दिन के अख़बार में छपा — "अल्पसंख्यक समुदाय के लोगों को सुरक्षित स्थानों पर पहुँचाने का काम बड़े पैमाने पर पूरा कर लिया गया है। पुराना क़िला, ईदगाह और कई पुलिस थानों में सैकड़ों (अल्पसंख्यक समुदाय के लोग) इकट्ठा हो चुके हैं।" यानी सिर्फ़ सैकड़ों? *हिंदुस्तान टाइम्स* उनके बारे में परेशान नहीं था जो यहाँ से हमेशा के लिए चले जा रहे थे। अख़बार में तो कमोबेश सिर्फ़ उन्हीं की पीड़ा का ज़िक्र था जो पाकिस्तान से भारत आ रहे थे — अगस्त में 1,26,668; सिंतबर में 1,13,247 और पूरे 1947 में कुल 4,68,562।[13]

पुराने क़िले में तरह-तरह के लोग वॉलंटियर का काम कर रहे थे। जामिया मिलिया इस्लामिया विश्वविद्यालय के विद्यार्थी, जमीयत-उल-उलेमा के कर्मचारी, गांधीवादी, ट्रेड यूनियन कार्यकर्त्ता — सब यहाँ शरणार्थियों की मदद कर रहे थे। बेगम अनीस किदवई के लिखे वृत्तांत, हुमायूँ का मक़बरा राहत शिविर में 'जामिया ब्वॉयज़' के साथ काम करने वाले मसूद-अल-हक़ के साथ मेरी बातचीत और सुभद्रा जोशी (जो ट्रेड यूनियन कार्यकर्त्ता थीं और क़िले में राहत का इंतज़ाम करने के अलावा उन्होंने 'शांति दल' के नाम से कार्यकर्त्ताओं का एक जत्था भी बनाया था जो पुल बंगश और बाड़ा हिंदुराव के मुस्लिम बहुल इलाक़े में शांति बनाए रखने के लिए पहरे देता था) के ब्योरों से पता चलता है कि इन शिविरों के लोग यहाँ से निकलने और किसी भी तरह पाकिस्तान को रवाना होने के लिए कितने बेचैन थे और उन्हें यहाँ रुके रहने के लिए तैयार करने में लोगों को कितनी मुश्किल पेश आ रही थी। जब भी पाकिस्तान को जाने वाली किसी रेलगाड़ी का ऐलान होता तो लोग तीन दिन पहले ही क़तार लगाकर खड़े हो जाते थे। सुभद्रा जोशी के मुताबिक़ मौलाना आज़ाद की कोशिशों के बावजूद हालात में कोई ख़ास सुधार नहीं आया। और तो और, मौलाना आज़ाद कैम्प के रहवासियों की इस माँग से आजिज़ आ चुके थे कि उन्हें घर वापसी से पहले हिफ़ाज़त के लिए हथियार दिए जाएँ। आख़िरकार उनके सब्र का बाँध टूटने लगा। उन्होंने चिढ़ कर कहा, 'अगर पाकिस्तान ही जाना है तो जाओ। तुम लोग यहाँ रह कर भी सरकार पर कोई अहसान नहीं कर रहे हो?'

पुराना क़िला स्थित मुस्लिम राहत शिविर के बंद होने के कुछ ही अर्सा बाद पुराना क़िला एक और शरणार्थी शिविर में तब्दील हो गया। पुराने शरणार्थी शिविर के लोगों को या तो हुमायूँ के मक़बरे में चल रहे शरणार्थी शिविर में भेज दिया गया या वह पाकिस्तान चले गए थे। नए शरणार्थी शिविर में पश्चिमी पंजाब और पश्चिमोत्तर सीमांत प्रदेशों से आए हिंदू और सिक्ख शरणार्थियों को लाकर रख दिया गया। 1948 के आख़िर में पेशावर के पास स्थित मरदान से इस राहत शिविर में पहुँचे किशनलाल उस वक़्त महज़ 15 साल के थे। उन्हें उस जमाने में राहत शिविर के तम्बुओं में गुज़ारे दिन और 1952 में 10x10 फ़ुट के पक्के क्वार्टरों में बिताई ज़िंदगी अब तक याद है। उनका अंदाज़ा है कि क़िले के भीतर इस तरह के 12,000 क्वार्टर रहे होंगे और हर क्वार्टर में तक़रीबन चार लोग ज़रूर थे। इसका मतलब है कि क़िले के भीतर 50,000 लोग थे। उनके भाई प्रेमचंद के मुताबिक़ यह तादाद 30,000 के आसपास थी। वहाँ लगभग पचास मीटर की जगह में एक फाटकनुमा बाज़ार था जो क़िले के सामने से गुजरने वाली सड़क के चौराहे पर पड़ता था। जहाँ अब भारतीय पुरातत्त्व विभाग का

दफ़्तर है वहाँ उस समय एक सरकारी स्कूल था। तलाक़ी दरवाज़े के ऊपर, क़िले के उत्तरी फाटक पर एक गुरुद्वारा भी था।

III. इंद्रप्रस्थ की पुनर्रचना

सन् 1955 तक आते-आते क़िले के इर्द-गिर्द की जगह भरने लगी थी। सैयद अहमद ख़ान ने जिन्हें इंदरपत के मशहूर मैदानों[14] (जिसके एक हिस्से को अब इंद्रप्रस्थ एस्टेट के रूप में स्मारक का दर्जा दे दिया गया है) का नाम दिया था उन पर अब तामीर के निशान दिखाई देने लगे थे। बापा नगर, काका नगर और सुंदर नगर का तो निर्माण किया ही गया, क़िले के ठीक उत्तर में भी भारतीय उद्योग मेले के लिए मैदान ख़ाली कर दिया गया। यह मेला 29 अक्टूबर 1955 से शुरू हुआ और नौ सप्ताह तक चलता रहा। 1 जनवरी 1956 को नेहरू ने लिखा, "उद्योग मेले की कामयाबी इतनी ज़बरदस्त रही कि मेरे ख़याल में अगर आप नुमाइशों के लिए कोई स्थायी इंतज़ाम कर लें तो बेहतर रहेगा... कहने का मतलब है कि जहाँ यह नुमाइश लगाई गई है उस स्थान को स्थायी रूप से इसी काम के लिए आरक्षित कर दिया जाए और किसी इमारत या अन्य किसी कार्य के लिए उसका इस्तेमाल न किया जाए...।"[15] और इस तरह उस कहानी की शुरुआत हुई जिसे 1972 के बाद प्रगति मैदान के नाम से जाना गया। इस उद्योग मेले के बारे में फ़िक्की के चेयरमैन का कहना है, "उसमें कम से कम 21 देशों ने शिरकत की थी... उनके बीच बड़ी दोस्ताना होड़ थी यह दिखाने की कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी से इंसानियत की तक़दीर किस क़दर बदली जा सकती है।"[16] इस मौक़े पर मुझे महाभारत की कहानी याद पड़ती है। कहते हैं कि जब कृष्ण और अर्जुन ने अग्नि के कहने पर जंगल को जलाकर राख कर दिया तो माया ने पांडवों के इंद्रप्रस्थ के लिए एक चमत्कारिक भव्य भवन का निर्माण कर दिया था। इस बार फ़र्क़ सिर्फ़ यह था कि इंद्रप्रस्थ की ज़मीन पर बनाया गया भव्य भवन अग्नि और माया के लिए नहीं बल्कि विज्ञान और प्रौद्योगिकी की नुमाइश के लिए था। और जिस साल क़िले के उत्तरी इलाक़े में इंद्रप्रस्थ को एक नई शक्ल दी जा रही थी उसी साल क़िले के भीतर उसे एक बार फिर खोजने की कोशिशें भी चल रही थीं।

1954-55 के *इंडियन आर्कियोलॉजी रिव्यू* के मुताबिक़, "इस जगह की प्राचीनता का पता लगाने और यह सुनिश्चित करने के लिए नॉर्थ वेस्ट सर्कल के श्री बी.बी. लाल द्वारा एक प्रायोगिक खुदाई की गई कि क्या यह वही जगह है जिसे प्राचीन काल में इंद्रप्रस्थ कहा जाता था। खुदाई से पता चला कि लगभग 1,000 ईसा पूर्व के काल में यहाँ इंसानी रिहाइश थी और ये लोग विशिष्ट प्रकार के बर्तनों और सलेटी रंग की चीज़ों का इस्तेमाल किया करते थे...। खुदाई पूरी नहीं हो सकी...।"[17] खुदाई क्यों अधूरी रह गई इस बारे में कोई कारण नहीं दिया गया। अनुमानतः खुदाई इसलिए पूरी नहीं हो पाई क्योंकि खुदाई एक ऐसी जगह पर की जा रही थी जहाँ आबादी काफी घनी थी।

28 अक्टूबर 1955 को नेहरू ने लिखा, "क्योंकि यह {चिड़िया घर} एक विशाल पार्क बनने जा रहा है इसलिए इसका क्षेत्रफल काफ़ी बड़ा होना चाहिए और स्वाभाविक रूप से पुराना क़िला भी उसके भीतर आ जाएगा. .. पुराना क़िला हमारे अत्यंत बहुमूल्य पुरावशेषों के भंडार का एक हिस्सा है। मुझे यह इमारत बहुत पसंद है और पुराने क़िले के आसपास का सारा इलाक़ा तमाम तरह की इमारतों से आज़ाद रहना चाहिए। मुझे यह जानकर बड़ा दुख हुआ है कि बहुत सारे शरणार्थी अभी भी वहाँ रह रहे हैं। मेरे विचार से उन्हें वहाँ से हटा दिया जाना चाहिए।"[18] उसी दिन नेहरू ने पुनर्वास मंत्री एम.सी. खन्ना को लिखा कि पुराना क़िला इलाक़े को जल्दी से जल्दी ख़ाली कराया जाए। इसके जवाब में एम.सी. खन्ना ने लिखा कि पुराने क़िले में रहने वाले परिवारों के लिए नई जगह ढूँढने में साल भर का समय लग जाएगा।[19]

शरणार्थी साल भर बाद भी वहाँ से नहीं हटे। नतीजा ये हुआ कि पुराना क़िला चिड़िया घर के भीतर नहीं आ सका। 1959 में पुराने क़िले के बिना ही चिड़िया घर का उद्घाटन कर दिया गया। मगर यहाँ नेहरू की नज़र हमें कुछ सोचने पर मजबूर करती है। वह ज़ूलॉजिकल ऐण्ड बॉटेनिकल गार्डन यानी चिड़िया घर की कृत्रिम हरियाली में इस क़िले को इतिहास से काटकर देखना चाहते थे। उनकी इस इच्छा को देखकर ऐसा लगता है

मानो वह 'ऐतिहासिक' स्थल को एक ऐसे रूप में देखना चाहते थे जिसमें इतिहास के अगले पड़ावों के लिए कोई जगह नहीं होती। उनकी नज़र में ऐसे स्मारकों को रोज़-ब-रोज़ ज़िंदगी की भागमभाग से अलहदा रख कर हरे-भरे मैदानों में स्थित कर देना ज़्यादा बेहतर था। नतीजा, एक तरफ़ चिड़िया घर और दूसरी तरफ़ प्रगति मैदान — यानी अतिआधुनिकता और व्यवस्थित जंगलों से घिरा पुराना क़िला उस शहरी यथार्थ में अपना संदर्भ खो देता है जिसका वह कभी अभिन्न अंग था। दक्षिण में हुमायूँ का मक़बरा, जो अब चिड़िया घर के भीतर आ चुका है, की तरफ़ फैले मध्यकालीन शहर के अवशेषों से अलग-थलग और शीघ्र ही देश विभाजन के मारे शरणार्थियों को पनाह देने के सौभाग्य से वंचित हो जाने वाले क़िले को सिर्फ़ इंद्रप्रस्थ के रूप में देखा जा सकता था जिसका इतिहास सोलहवीं सदी के एक छोटे से वक़्फ़े के अलावा 1,000 ईसा पूर्व में ही किसी मोड़ पर ठहर चुका था। सोलहवीं सदी के उस छोटे से वक़्फ़े में यहाँ क़िला-ए-कोहना और शेर मंडल बनाए गए और हुमायूँ के पतन के साथ इतिहास का यह दौर भी ख़त्म हो गया। अब यह क़िला एक ऐसे देश की राजधानी में इंद्रप्रस्थ के रूप में खड़े रहने के लिए अभिशप्त था जिसने कौरवों और पांडवों के कथानायक पूर्वज 'भरत' के नाम से अपना नाम लिया था।

1963 में हुए भारत-चीन युद्ध के कुछ समय बाद पुराने क़िले के बाशिंदों को वहाँ से हटा दिया गया। बीसवीं सदी में यह तीसरा ऐसा मौक़ा था जब पुराने क़िले को खाली कराया जा रहा था। क़िले में रहने वाले शरणार्थियों को कालकाजी और लाजपत नगर में मामूली दरों पर ज़मीन के पट्टे दे दिए गए। इलाक़े के हिसाब से ये पट्टे 100 और 200 गज़ क्षेत्रफल के थे। किशन लाल ने जिन 10x10 फुट के क्वॉर्टरों का ज़िक्र किया था, उनमें रहने के बाद लोगों के लिए इतने बड़े पट्टे वाक़ई क़िस्मत की बात थी। मगर फ़िरोज़शाह कोटला शरणार्थी शिविर में रहने वाले शरणार्थियों की क़िस्मत ऐसी नहीं थी। वहाँ के शरणार्थियों को वहीं रहने दिया गया। शायद इसकी एक वजह यह थी कि ये खंडहर इंद्रप्रस्थ के अतीत का हिस्सा नहीं थे।

क़िले की सफ़ाई के कुछ साल बाद 1969 में "सर्वे की अन्वेषण शाखा ने पुराना क़िला, जिसे महाभारत में वर्णित पांडवों से संबंधित प्राचीन इंद्रप्रस्थ का केंद्र माना जाता है, में खुदाई शुरू कर दी।"[20] इस खुदाई का मक़सद "हुमायूँ से पहले की तमाम आबादियों की पूरी शृंखला का पता लगाना" और "प्रत्येक काल की आबादियों के उल्लेखनीय हिस्सों को सामने लाना"[21] था। भैरो मंदिर की तरफ़ स्थित फाटक यानी जल फाटक की ओर जाने वाले गलियारे के उत्तरी किनारे से सटे 30 वर्ग मीटर स्थान पर चरणबद्ध ढंग से खुदाई शुरू की गई। पीछे उल्लिखित उद्देश्यों के लिहाज़ से इस खुदाई के नतीजे 'निराशाजनक' रहे क्योंकि यहाँ मौर्यकाल तक तो नियमित डिपॉज़िट्स पाए गए मगर महाभारत कालीन सलेटी पुताई वाले बर्तनों और भौतिक संस्कृति का वहाँ कोई निशान नहीं मिला। अगले साल खुदाई का मक़सद "पीजीडब्ल्यू के नियमित क्षितिज सहित प्राक् मौर्य स्तरों को उजागर करना" तथा "पहले ही सामने आ चुके सांस्कृतिक दौर के और बड़े क्षेत्र को सामने लाना"[22] था। "इस जगह तीन अलग-अलग स्थानों पर की गई खुदाई में पीजीडब्ल्यू का नियमित सांस्कृतिक क्षितिज दिखाई नहीं दिया... बहरहाल इस तरह के बर्तनों के कुछ ठीकरों, जिनमें से कुछ का इस्तेमाल स्टापू के तौर पर भी हुआ होगा, का मिलना इस बात की तरफ़ इंगित करता है कि आसपास की जगह में इस तरह की चीज़ों का नियमित अंतराल पर जमाव ज़रूर रहा होगा...। मौर्य काल में एनबीपी बर्तनों का इस्तेमाल एक विशिष्ट बात थी। जहाँ खुदाई की जा रही है वहाँ प्राकृतिक मिट्टी के ऊपर इस काल की चीज़ों के अवशेष पाए गए।"[23] अगले साल "की खुदाई के उद्देश्य थे — (1) मुग़ल काल की इमारतों के ढाँचे को सामने लाना, और (2) तीसरी एवं चौथी सदी ईसा पूर्व से पहले के दौर में इस स्थान की सांस्कृतिक विषयवस्तु का पता लगाना।"[24] खुदाई के तीसरे साल तक भी महाभारत और मुग़ल काल के बीच की अवधि में यहाँ निरंतर रिहाइश के इतिहास को ढूँढने के बावजूद एएसआई आधिकारिक रूप से निराश नहीं था।[25] खुदाई में जो चीज़ें हाथ लगीं उनके लिए एएसआई के इरादों और सोच में कहीं जगह नहीं थी। वह तो... ठीकरों पर ही चिपके हुए थे, "मगर इनमें से एक गड्ढे में एनबीटी वस्तुओं से संबंधित स्तर पर सलेटी मिट्टी के कुछ बारीक और पतले ठीकरे पाए गए जो पीजीडब्ल्यू के साथ नज़दीकी तौर पर संबद्ध प्रतीत होते हैं...।"[26] 1972-73 इस खुदाई का आख़िरी साल था और अब भी "इस स्थान के सबसे पुराने

सांस्कृतिक क्षितिज का पता लगाने" और "मुग़लकाल की आबादी के और अधिक ब्योरों की शिनाख़्त करने"[27] की कोशिश मुसलसल जारी थी।

"इनमें से एक गड्ढे में हुई गहरी खुदाई से ईसा पूर्व तीसरी-चौथी सदी से लेकर मुग़लों के आने तक के दौर के बारे में पहले से ज्ञात सांस्कृतिक शृंखला की पुष्टि हुई है।"[28] जिस महाभारतकालीन आबादी की इतनी शिद्दत से तलाश हो रही थी, वह क़िले के भीतर कहीं नहीं थी। बाद में, इन खुदाई अभियानों का नेतृत्व करने वाले प्रो. बी.बी. लाल ने एक साक्षात्कार में कहा, "पीजीडब्ल्यू परतों में हमें मिट्टी का बना सिर्फ़ एक छोटा सा ढाँचा मिला था। मेरा ख़याल है कि शहर का मुख्य हिस्सा सम्भवतः दक्षिण की तरफ़ — हुमायूँ फाटक से हुमायूँ के मक़बरे तक — कहीं रहा होगा... इस पूरे इलाक़े (जहाँ अब चिड़िया घर और सुंदर नगर हैं) — ख़ासतौर से जमना के पास — हमें रंगी हुई सलेटी टोकरियाँ मिली हैं।"[29]

1972 यानी क़िले में आख़िरी साल की खुदाई के समय बी.बी. लाल ने 51 साल की उम्र में स्वैच्छिक सेवानिवृत्ति ले ली। सेवानिवृत्ति के काफ़ी समय बाद भी वह पुराना क़िला आते रहे। कथित रूप से वह इन खुदाइयों पर आधारित अपनी रिपोर्ट पूरी करना चाहते थे। ऊपर हमने जिस साक्षात्कार का ज़िक्र किया है वह नब्बे की दशक की शुरुआत में विलियम डेलरिम्पल ने उस समय लिया था जब बी.बी. लाल अपनी रिपोर्ट के सिलसिले में क़िले में डेरा डाले हुए थे। पिछले साल तक भी उनकी कोई रिपोर्ट सामने नहीं आई। 17 मई 2002 को *टाइम्स ऑफ़ इंडिया* ने ख़बर दी कि 'केंद्रीय संस्कृति मंत्रालय ने इस बात पर भारी एतराज़ जताया है कि आर्कियोलॉजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया (एएसआई) द्वारा कई बार खुदाई करने के बावजूद रिपोर्ट तैयार नहीं हुई है... कुछ पुरातत्त्वशास्त्रियों — मिसाल के तौर पर लाल — ने सेवानिवृत्ति के बाद भी पुराने क़िले में एएसआई की सुविधाओं का यह कहकर इस्तेमाल किया है कि वह इस बारे में अपनी रिपोर्ट पूरी करना चाहते हैं मगर उनकी रिपोर्टें कभी पूरी नहीं हो पाईं। अयोध्या, पुराना क़िला और कालीबंगन में हुई खुदाई से जुड़े रहे लाल इस आरोप को ग़लत बता रहे हैं। उनका कहना है कि "...पुराना क़िला में छोटी सी खुदाई की गई थी जिसकी रिपोर्ट 'इंडियन आर्कियोलॉजी : ए रिव्यू' में भी आई थी।"'[30] तो पाँच साल की खुदाई छोटी सी खुदाई होती है!

जहाँ तक मुझे जानकारी है, इस बारे में अब तक अंतिम रिपोर्ट तैयार नहीं हुई है और *इंडियन आर्कियोलॉजिकल रिव्यू* में भी सिर्फ़ दो पेजी सारांश भर छपा था। इसी बीच, खुदाई के तक़रीबन फ़ौरन बाद पुराना क़िला एनएसडी (राष्ट्रीय नाट्य विद्यालय) के लोकप्रिय नाटक 'तुग़लक़' और इब्राहिम अल्काज़ी के निर्देशन में महाभारत पर आधारित 'अंधा युग' का मंच बन गया। बी.बी. लाल के बाद एएसआई के महानिदेशक बने एम.एन. देशपांडे ने इसमें बढ़-चढ़कर हाथ बँटाया था।

खुदाइयों के तीन साल बाद और आपातकाल के बीचोंबीच दिल्ली प्रशासन ने 64 साल बाद 1976 में अपना दिल्ली गज़ेटियर प्रकाशित किया। इस गज़ेटियर में दिल्ली के इतिहास, अर्थव्यवस्था, समाज; यानी कुल मिलाकर दिल्ली की वेश्याओं से लेकर दिल्ली के 'दिलचस्प स्थानों' तक हर मुमकिन पहलू के बारे में एक से एक बारीक जानकारियाँ दी गईं। इस गज़ेटियर में 1857 के संघर्ष में शहर की भूमिका और विभाजन के इतिहास को अविश्वसनीय रूप से विस्तारपूर्वक दर्ज किया गया। विभाजन के वृतांत्त में पुराने क़िले के राहत शिविरों का कोई ज़िक्र नहीं था। एक जगह भी नहीं। 1947 के मुस्लिम राहत शिविरों या पाकिस्तान से आए हिंदू-सिक्ख शरणार्थियों के लिए चलाए गए राहत शिविरों का उसमें ज़रा सा भी ज़िक्र नहीं है। हालाँकि बाद वाले शिविरों को इस गज़ेटियर के प्रकाशन से सिर्फ़ 13 साल पहले हटाया गया था। बहरहाल, 'दिलचस्प स्थानों' वाले खंड में इसी पुराने क़िले को सम्मानपूर्वक जगह दी गई है हालाँकि इस बात का ज़िक्र यहाँ भी नहीं है कि सोलहवीं सदी के बाद कभी इस क़िले में इंसानी आबादी भी रही है। इसमें कहा गया है, '...एएसआई ने हाल के सालों में पुराने क़िले के भीतर कई बार खुदाई की जिससे लगभग 1,000 ईसा पूर्व से मुग़लकाल तक की कई सांस्कृतिक शृंखलाओं का पता चला है।'[31] भैरों मंदिर के बारे में बताया गया है कि वह "घने झाड़-झंखाड़ की वजह से लगभग ओझल हो चुका है। यह भैरों नाथ का प्राचीन मंदिर है जो पुराने क़िले की पूर्वी दीवार से सटा हुआ है और दिल्ली के सबसे छोटे मगर सबसे ऐतिहासिक पूजा स्थलों में शुमार किया जाता है। जनश्रुतियों के अनुसार इस मंदिर का निर्माण पांडवों और कौरवों के बीच लड़े गए ऐतिहासिक युद्ध से ठीक पहले कराया गया था। यह

मंदिर भैरो नाथ की प्रतिमा की स्थापना के लिए बनाया गया था...।"[32] जनश्रुतियों की बात तो सही है पर क्या ये जनश्रुतियाँ ऐतिहासिक रूप से सत्य भी हैं?

तीस साल से भी ज़्यादा समय से तैयार की जा रही रिपोर्टों की ग़ैरहाज़िरी, जहाँ खुदाई की गई उन स्थानों के रख-रखाव की उपेक्षा और वहाँ उग आए झाड़-झंखाड़ व लापरवाही, क़िले के बाकी हिस्सों और खुदाई के गड्ढों के बीच ख़त्म होता फ़र्क़, पुरातत्त्व की दृष्टि से समृद्ध खुदाई में मिले नमूनों को सार्वजनिक दृष्टि से बचाए रखने की कोशिश (क़िले के भीतर बना संग्राहलय पिछले कम से कम तीन साल से बंद पड़ा है) और इंद्रप्रस्थ एवं हुमायूँ काल के बीच इस स्थान के किसी भी इतिहास का ज़िक्र न होना मेरी नज़र में सिर्फ़ सरकारी उपेक्षा और लापरवाही का संकेत नहीं है बल्कि यह क़िले के अतीत के कुछ हिस्सों को भुला देने की एक सोची-समझी कोशिश है। इस विस्मृति और धुलाई-पुँछाई से एक तरफ़ तो 'पांडवकालीन भैरों मंदिर' की संदेहास्पद ऐतिहासिकता को 'आधिकारिक' हैसियत मिल जाती है और दूसरी तरफ़ एएसआई को प्राचीन स्मारक एवं पुरातात्त्विक स्थल व अवशेष अधिनियम, 1958 के प्रावधानों को मनमाफ़िक़ ढंग से लागू करने की छूट मिल जाती है।

पूर्व केंद्रीय पर्यटन एवं संस्कृति मंत्री श्री जगमोहन की देख-रेख में एएसआई ऐतिहासिक स्मारकों, ख़ास तौर से यूनेस्को द्वारा वर्ल्ड हैरीटेज साइट्स की श्रेणी में घोषित स्मारकों पर हो रहे 'अतिक्रमण' से निपटने में ख़ासा सक्रिय रहा है। पुराने क़िले को भी इसी श्रेणी में रखे जाने की बढ़-चढ़कर माँग की जा रही है।[33] हुमायूँ के मक़बरे से 50 मीटर और क़ुतुबमीनार से 200 मीटर दूर निर्मित इमारतों के ख़िलाफ़ तेजी से कार्रवाई की जा रही है और इस बात का जमकर प्रचार भी किया जा रहा है।[34] इस अभियान की गाज हाल ही में हुमायूँ के मक़बरे के लंबे-चौड़े मैदान को घेरने वाली दीवार से 50 मीटर दूर बनाई जा रही एक मस्जिद पर भी गिरी है। महरौली की क्रिश्चियन कॉलनी (जो सर्वोच्च न्यायालय के दिशा-निर्देशों द्वारा निर्धारित 'नियंत्रित क्षेत्र' की सीमा यानी संरक्षित स्मारक से 300 मीटर की दूरी के भीतर स्थित है) में रहने वाले कुछ लोगों ने जब अपने एक मंज़िला मकानों पर दूसरी मंज़िल चढ़ाने की कोशिश की तो उनके साथ भी यही सुलूक किया गया। जब दिल्ली में जगह की इतनी भारी क़िल्लत है उस समय इस तरह के दिशा-निर्देशों की प्रासंगिकता पर सवाल खड़ा करने के साथ-साथ ये घटनाएँ एएसआई के तौर-तरीक़े में निहित साम्प्रदायिक रवैये की ओर भी संकेत करती हैं। अब भैरों मंदिर 1976 के गज़ेटियर वाला 'सबसे छोटा' नहीं बल्कि एक विशाल और चारों तरफ़ पसरता मंदिर बन चुका है। उसमें कंक्रीट सिरेमिक की टाइलों और सीमेंट व एक्रीलिक रंग-रोग़न का इस्तेमाल किया जा रहा है। इस मंदिर के दायरे में हर रोज़ नए निर्माण हो रहे हैं जबकि यह पुराने क़िले से कुछ सौ मीटर की दूरी पर भी नहीं बल्कि उसकी पूर्वी दीवार से सटा हुआ है। मंदिर की छत पर सिंटेक्स की टंकियाँ और डिश-एँटीना लगे हुए हैं जो क़िले की दीवारों को मुँह चिढ़ाते दिखाई देते हैं। न केवल इन गतिविधियों को रोकने के लिए कोई कार्रवाई नहीं की गई है बल्कि यहाँ के हालात को देखकर लगता है कि एएसआई ने इस बारे में कभी सोचा तक भी नहीं होगा। एएसआई ने मुसलमानों और ईसाइयों द्वारा कराए जा रहे निर्माण पर तो रोक लगा दी जबकि नियमों का उनसे भी ज़्यादा उल्लंघन कर रहे हिंदुओं को पूरी तरह नज़रअंदाज़ कर दिया गया।

IV. क़िले में टहलते हुए

मान लीजिए कि आप भी ज़्यादातर लोगों की तरह इतवार की सुबह क़िला देखने जाते हैं और प्रगति मैदान बस टर्मिनल पर उतरते हैं। बस टर्मिनल की उबड़-खाबड़ कंक्रीट और क़िला-ए-कोहना मस्जिद की पत्थर, संगमरमर और बिल्लौरी पत्थरों से बनी इमारत के बीच आपका यहाँ हर इतवार की तरह मेलानुमा भीड़भाड़ से साबक़ा पड़ेगा। इस जगह आपको लोगों की एक लम्बी क़तार दिखेगी। क़तार में हज़ार से ज़्यादा लोग होंगे जो खुले मैदान से धीरे-धीरे भैरों मंदिर के भीतरी परिसर की तरफ़ बढ़ रहे होंगे। यह वही भैरों मंदिर है जो पुराने क़िले की पूर्वी दीवार से सटा खड़ा है। यहाँ आप देखेंगे कि भैरों बाबा को बाक़ी क़िस्म की शराबों के मुक़ाबले व्हिस्की कुछ ज़्यादा पसंद है। जी हाँ, क़तारबद्ध खड़े ज़्यादातर लोगों के हाथ में आपको व्हिस्की की बोतलें ही दिखाई देंगी। नज़दीक जाने पर आप देखेंगे कि एक तांत्रिक श्रेणी के और मदिरापान से उज्र न करने वाले देवता के

इर्द-गिर्द भी ब्राह्मणवादी आलू-कचौड़ी की दावत का पूरा इंतज़ाम किया गया है। वहाँ आपको 1994 में बनाया गया माता कुंती द्वार भी दिखाई देगा जिसका साहिब सिंह वर्मा ने उद्घाटन किया था और जो एएसआई के नियमों का खुल्लमखुला उल्लंघन है। यह द्वार क़िले की दीवार से बिल्कुल सटा हुआ है और बग़ल में खड़ी मस्जिद की बुलंदी को मुँह चिढ़ाता-सा दिखाई देता है। अगर आप काले भैरों बाबा की तांत्रिक प्रतिमा पर शराब चढ़ाने की उम्मीद में व्हिस्की की बोतल हाथ में लिए खड़े हों तो आपको इस द्वार और मस्जिद का वैषम्य साफ़ दिखाई देगा। इस द्वार पर आपको मंदिर के पांडव कालीन अतीत की गौरवगाथा दिखाई देगी। हालाँकि सच तो ये है कि मंदिर का कोई भी पहलू आपको इस गौरवगाथा का अहसास दिलाए बिना नहीं रहेगा। ऊपर सोलहवीं सदी की मस्जिद को घेरता फाटक और नीचे इतवारी हिंदू भक्तों की लम्बी क़तार एक ऐसा वृत्तांत है जो बाबरी ध्वंस के बाद निहायत सहज लगने लगा है। यहाँ इस बात का ऐलान करते पर्चे-पोस्टर और बैनर भी आपकी आँखों से बच नहीं पाएँगे कि भिखारियों को शराब देना निषिद्ध है। जब आप मंदिर और थनों में पानी की टूँटियाँ लगाए खड़ी पत्थर की गाय की बग़ल से निकलते हैं तो क़िले की पूर्वी दीवार के समानान्तर जाती सड़क पर पहुँच जाते हैं जो ख़ास मंदिर तक आने-जाने के लिए ही बनाई गई है। यहाँ कई सौ भिखारी आपको हाथ-रिक्शों पर बैठे मिलेंगे। इनमें से ज़्यादातर वाक़ई अपाहिज हैं। यहीं आपका सामना आशा नाम की एक औरत से भी हो सकता है जो बीच-बीच में कूद कर अपने रिक्शा से बाहर आ जाती है और इन विकलांगों से बदतमीज़ी करने वाले शराबी से दो-दो हाथ करने को सदा तैयार रहती है। अगर आप उससे बात करें तो सम्भवतः वह आपको बताएगी कि बाक़ी भिखारियों की तरह वह भी नेहरू स्टेडियम के गेट नं. 7 के पास वाली झुग्गी बस्ती में रहती है। वह आपको बताएगी कि हफ़्ते के किस दिन वह साईं बाबा मंदिर, हनुमान मंदिर, कनॉट प्लेस और यहाँ भीख माँगने आती है। जी हाँ, हर मंदिर के लिए हफ़्ते का एक दिन तय है। बात करने पर पता चलता है कि वह अपने आठ साल के बेटे को भी साथ लाती है। वह अपने बेटे को किसी ऐसे स्कूल में पढ़ाना चाहती है जहाँ हॉस्टल की सुविधा उपलब्ध हो। मगर क्योंकि उसके पास लड़के का जन्म प्रमाण पत्र नहीं है इसलिए वह अब तक लड़के को स्कूल में दाख़िल नहीं करवा पाई है। उसका कहना है कि हालाँकि सारे बाबू लोग जानते हैं कि वह अपाहिज नहीं है फिर भी वे उसे पैसा/शराब दे देते हैं क्योंकि उसका पति सचमुच अपाहिज था। अब उसके पति की मौत हो चुकी है मगर उसे पेंशन नहीं मिलती इसलिए उसके पास यहाँ-वहाँ भीख माँग कर गुज़र करने के अलावा भला क्या चारा बचता है? इस बातचीत में आपके साथ-साथ दूसरे भिखारी भी ठहाके लगाने लगेंगे और हो सकता है धीरे-धीरे आपको भी सुबह से देर रात तक चलने वाली इस खिलंदड़ी और लस्त-पस्त उछल-कूद में मज़ा आने लगे हालाँकि वे बैनर अब भी बार-बार आपको चिढ़ाते रहेंगे जिन पर लिखा है कि भिखारियों को शराब देना अच्छी बात नहीं है।

मंदिर से निकलने वाले बाक़ी लोगों के साथ यहाँ से आप क़िले के कोने से होते हुए डीडीए फ़िज़िकल फ़िटनेस ट्रेल में दाख़िल हो जाएँगे जिसके भीतर क़िले की उत्तरी दीवार के बग़ल में कसरत के लिए पैरेलल बार लगे हुए हैं। इसके बग़ल में रोड़ी की बनी फ़ुटपाथ है जिस पर चलते-चलते आप पुराना क़िला झील में दिल्ली टूरिज़्म की नौकाओं तक पहुँच जाते हैं। हो सकता है नब्बे के दशक में यहाँ हुई इस सारी तरक़्क़ी पर आप किंचित हैरान हो जाएं। इन बदलावों ने धर्म, मौज-मस्ती और व्यायाम के बीच एक भौगोलिक निरंतरता-सी पैदा कर दी है। हो सकता है यहाँ आपको वो जुमला याद आने लगे जिसे शाहिद अमीन ने उत्तरी दिल्ली स्थित रिज के हालात का बयान करने के लिए इस्तेमाल किया है। बक़ौल शाहिद अमीन, पुराना क़िला को एक अनैतिहासिक वर्तमान में क़ैद कर दिया गया है। क़िले के मुहाने के पास आप फ़िज़िकल फ़िटनेस ट्रेल से बाहर निकलते हैं जहाँ कुछ जोड़े या चिड़िया घर के भीड़-भड़क्के से त्रस्त लोग क़िले के भीतर दाख़िल होते दिखाई देते हैं। उनके पीछे-पीछे आप भी क़िले में पहुँच जाते हैं। अचरज की बात यह है कि ऐतिहासिक रूप से इतनी महत्वपूर्ण इमारत में आपको एक भी गाइड नहीं मिलेगा। अगर आपके साथ कोई साहब हैं जिन्हें आप क़िले में घुमाना चाहते हैं तो यह आपके लिए एक मुश्किल समस्या बन जाएगा। इस मई से कुछ प्राइवेट सिक्योरिटी गार्ड्स यहाँ रख दिए गए हैं। आठ निजी सिक्योरिटी गार्ड दो पालियों में इस क़िले की पहरेदारी करते हैं। क़िले में बाग़वानी विभाग के प्रमुख बी. एस. नेगी के शब्दों में उन्हें 'अंतरंग' गतिविधियों को रोकने के लिए तैनात किया गया है।

बहरहाल, क़िले के बहुत सारे हिस्से पूरी तरह ख़स्ता हालत में हैं जिससे ऐसा लगता है कि एएसआई की प्राथमिकताएँ पूरी तरह सही नहीं है। क़िले के कई कोने प्लास्टिक की बोतलों और तरह-तरह के कचरे से अंटे पड़े हैं। कई जगह 6 फुट से भी ऊपर तक घास उग आई है। अगर आप यहाँ पुरातत्त्व विभाग द्वारा खोदे गए गड्ढों को देखने की ग़रज़ से नहीं आए हैं तो आपकी उन पर नज़र भी नहीं पड़ेगी। वह तो झाड़-झंखाड़ में कब के दब चुके हैं। एएसआई ने भी हालात को क़ाबू में रखने के लिए कोई क़दम नहीं उठाया है। गड्ढों पर लगी तख़्तियों को तो भूल ही जाइए। गडढ़ों में इस क़दर झाड़ियाँ और कूड़ा इकट्ठा हो चुका है कि अब वह उथले-उथले, बेमानी से गड्ढे लगने लगे हैं। क़िले के भीतर स्थित पुरातात्त्विक संग्रहालय तीन साल से बंद पड़ा है। जब-तब उसके तालाबंद दरवाज़ों से टिक कर बैठ जाने वाले लोगों के मुताबिक़ यहाँ का समूचा संग्रह लाल क़िले में भेज दिया गया है। मगर क़िले के भीतर एक स्थायी और ग़ैर-दोस्ताना पुलिस चौकी ज़रूर मौजूद है और अफ़वाहों पर यकीन करें तो पता चलता है कि इन गड्ढों से बहुत सारी बेशक़ीमती चीज़ें निकाल कर ज़ाया की जा चुकी हैं।

क़िला-ए-कोहना के भीतर आपका सामना रामप्यारी से भी हो सकता है जिन्हें एएसआई के बाक़ी तक़रीबन सौ कर्मचारियों की तरह अस्सी के दशक के मध्य में निकाल कर बाहर कर दिया गया था। उस वक़्त वह क़िले के भीतर ही रहा करती थीं। वह आपको बताएँगी कि अब वह नांगला-माची की अवैध बस्ती में किस तरह अपने दिन काट रही हैं। उनसे आप चिड़िया घर की दीवार और रेल की पटरियों के बीच बनी चिड़िया घर वाली कॉलनी के बारे में भी जान सकते हैं। यह बस्ती चिड़िया घर के कर्मचारियों ने ही बसाई थी। उनका कहना है कि वह अपने अवैध मकानों को सिर्फ़ इसलिए महफ़ूज़ रख पाई हैं क्योंकि स्थानीय विधायक ताजदार बाबर उनके साथ हैं।

अगर आप सचमुच ख़ुशक़िस्मत हैं तो क़िले के भीतर आपकी मुलाक़ात कुंती माता मंदिर के भारद्वाज से भी हो सकती है। इस मंदिर को ढूँढ पाना बहुत मुश्किल है क्योंकि भारद्वाज के मुताबिक़, एएसआई ने उसके चारों तरफ़ अशोक के पेड़ों की घनी क़तारें लगा दी हैं। 1963 में भारद्वाज के पिता ने शरणार्थियों के साथ यहाँ से जाने से इनकार कर दिया था क्योंकि उनका दावा है कि यह मंदिर मूल इंदरपत गाँव के ज़माने का है। पुराने क़िले के भीतर पेड़ों के झुरमुट में छिपे इस छोटे से मंदिर में वह अभी भी अपने परिवार के साथ रहते हैं। एएसआई ने उनके ख़िलाफ़ अदालत में मुक़दमा दायर किया हुआ है मगर अदालत के स्थगनादेश की मेहरबानी से वह अभी भी यहाँ डटे हुए हैं। उनका दावा है कि भैरों मंदिर सिर्फ़ पिछले तीस साल में ही बना है और स्कूलों में जो इतिहास पढ़ाया जा रहा है वह सब 'डफ़र' इतिहास है और क़िला-ए-कोहना मस्जिद के पाँच गुम्बद ही असल में वह पाँच भवन हैं जहाँ पाँडव बैठा करते थे — इसलिए, असल में यही उनका प्राचीन महल था।

यूँ तो क़िस्से चलते ही जाएँगे, बात से बात निकलती जाएगी, मगर आइए अब क़िले से चल कर किशन लाल की चाय की दुकान का भी एक फेरा लगा लें। किशनलाल की ज़िंदगी पिछले पचपन साल से क़िले के साथ जुड़ी हुई है। यही उनका घर था, यहीं उनके भाइयों ने पढ़ाई की, उनके बच्चे यहीं हुए और उनकी दुकान आज भी क़िले के ठीक बाहर क़ायम है। पुराना क़िला के साथ जुड़े बदलावों के बारे में किशन लाल का रवैया सबसे ज़्यादा संयम भरा और धीर-गम्भीर दिखाई देता है। वह कहते हैं, "पहले रिहाइशी थी, अब सैरगाह है।" मगर अब वह ज़्यादा चिंतित हैं क्योंकि जगमोहन इस स्मारक को वर्ल्ड हेरिटेज साइट बनाना चाहते हैं। उन्हें भय है कि 'पांडवों को दोबारा पुराने क़िले में बसाने'[35] की जगमोहन की योजनाओं में क़िले तक जाने वाली दुकानों की क़तार और उनकी चाय की दुकान शायद मुफ़ीद न रह जाए।

उनका भय बेबुनियाद भी नहीं है। अगस्त के आख़िर तक आते-आते चिड़िया घर और पुराने क़िले में आने वाले सैलानियों को चाय-पानी पिलाने वाले किशन लाल और बाक़ी दुकानदारों को यहाँ से अपना बोरिया-बिस्तर समेटने के नोटिस आ चुके थे। क्योंकि ये दुकानें 300 मीटर के नियंत्रित क्षेत्र में आती हैं इसलिए उन्हें कभी भी हटाया जा सकता है। हालाँकि उन्हें उम्मीद है कि अक्टूबर के अंत तक उन्हें नहीं हटाया जाएगा मगर अक्टूबर के बाद किसी को उम्मीद नहीं है कि वह यहाँ टिक पाएँगे। सत्तर पार कर चुके किशन लाल को भले सिर्फ़ कारोबार के लिए ही सही मगर इस बार एक बार फिर कहीं और पनाह लेनी पड़ेगी। जब क़िले के भीतर एएसआई

के दफ़्तर, जिनमें एक ज़माने में शरणार्थी शिविरों के लिए पाठशाला चलाई जाती थी,[36] को हटा दिया जाएगा तो क़िले में बनाए गए शरणार्थी शिविरों की आख़िरी निशानी भी यहाँ से हट जाएगी।

जब से अंग्रेजों ने अपनी नई राजधानी के नक़्शे में इस स्मारक को एक अहमियत की हैसियत के साथ शामिल किया था तभी से पुराना क़िला और उसका अतीत पहले साम्राज्य और उसके बाद राष्ट्र के वृत्तांत का एक अभिन्न अंग रहा है। तब से बार-बार कोशिशें की गई हैं कि यहाँ के सामान्य, आम-फ़हम, दैनंदिन इतिहासों को नज़रअंदाज़ या नेस्तनाबूद कर दिया जाए। इस बात को क़िले का आधिकारिक इतिहास बताने वाले यहाँ के साउंड ऐण्ड लाइट शो में देखा जा सकता है। इस शो में क़िले का इतिहास यमुना की ज़बानी कहा गया है। राष्ट्र के अतीत की महान घटनाओं से स्वतंत्रता की ओर बहने वाली नदी के रूप में इतिहास। मगर जैसा कि क़िले से संबंधित बीसवीं सदी के ऐतिहासिक अध्ययन बताते हैं, इस महावृत्तांतकारी धारा द्वारा यहाँ उलीच दी गई कीच और फूल-पत्ते यानी पलायन, बसाहट और विस्थापन की कहानियाँ ही हैं जो किसी शहर के इतिहास की रचना करती हैं और उसके स्मारकों को एक मानी देती हैं।

डेविड लोवनथाल लिखते हैं, 'जब हम एक बार यह जान जाते हैं कि पुरावशेष, इतिहास और स्मृतियाँ निरंतर बदलती रहती हैं तो हम अतीत की क़ैद से बाहर आ जाते हैं, हम किसी पवित्र मूल रूप की निरर्थक चाह में हताश नहीं होते। इसलिए, हमें ठीकरों को भी उतनी ही अहमियत देनी चाहिए जितना हम अपनी विरासत की सच्चाई को देते हैं। अस्तित्व में आई कोई भी चीज़ अनछुई नहीं रहती और कोई भी ज्ञात तथ्य कभी अपरिवर्तनीय नहीं रहता। मगर इन तथ्यों से हमें दुःखी नहीं होना चाहिए बल्कि मुक्ति की ओर बढ़ना चाहिए। इस बात को महसूस कर लेना बेहतर है कि हमारा अतीत सदा परिवर्तनशील रहा है बामुक़ाबले इसके कि हम उसे हमेशा हर हाल में यकसाँ साबित करने की कोशिश करते रहें...।'[37]

इससे पहले कि संरक्षण आंदोलन अनचाहे, अनजाने में जगमोहन के एजेंडा का हिस्सा बन जाए, उसे अतीत के संरक्षण के बारे में अपने रवैये पर एक बार फिर नज़र डाल लेनी चाहिए। यहाँ उस बात को एक बार फिर दोहराया जा सकता है जो वॉल्टर बेंयामिन ने वर्ग संघर्ष और 'सांस्कृतिक ख़ज़ानों' के बारे में कही थी, "...तमाम शासक उनके वंशज हैं जिन्होंने उनसे पहले फ़तह हासिल की थी...। जो फ़ातेहा रहे हैं वह अब तक उन विजय जुलूसों में हिस्सा ले रहे हैं जिनमें मौजूदा शासक साष्टांग दंडवत करने वालों के सिर पर पाँव रखकर आगे निकलते चले जाते हैं। परम्परागत व्यवहार के मुताबिक़ फ़तह की निशानियाँ भी जुलूस में साथ चलती हैं। उन्हें सांस्कृतिक ख़ज़ानों का नाम दिया जाता है और एक ऐतिहासिक भौतिकवादी नज़रिया उन्हें एहतियात भरे फ़ासले के साथ देखता है। उसे जो सांस्कृतिक ख़ज़ाने दिखाई देते हैं निरपवाद रूप से उनका उदय एक ऐसे स्रोत से हुआ है जिसके बारे में वह दहशत के बिना नहीं सोच सकता। इन ख़ज़ानों का अस्तित्व न केवल महान मस्तिष्कों और प्रतिभाओं की देन है बल्कि वह उन रचनाकारों के समकालीनों के बेनाम श्रम का भी परिणाम है। सभ्यता का कोई दस्तावेज़ ऐसा नहीं है जो साथ ही बर्बरता का भी दस्तावेज़ न हो।"[38] दिल्ली के मक़बरे, महल और क़िले, यानी अतीत के वह 'अभिजात्य' अवशेष जिनके लिए संरक्षणवादी ख़ेमा आज के अंडरडॉग्स के ख़िलाफ़ 'अतिक्रमण' और 'बेदख़ली' का विमर्श खड़ा करना चाहता है, सबके सब ख़ून में डूबे हुए हैं। अगर हम इसी बेंयामिनवादी नज़र से सोचें तो क्या हम पुराने क़िले को बर्बरता के इस इतिहास से उबारने की कल्पना नहीं कर सकते क्योंकि उसने इतिहास के पीड़ितों को कम से कम दो सदी तक बार-बार पनाह दी है। एक ऐसी मुक्ति/पनाह जिसे सम्भवतः फिर भुला दिया जाएगा।

सोचकर देखिए कि अगर दिल्ली के संरक्षणवादी विभाजन के बाद पुराने क़िले में लगे शरणार्थी शिविरों के स्मारक की माँग करें तो कैसा रहेगा? उस दौर की साझा पीड़ाओं, साझा ज़मीन का इससे बेहतर रूपक भला और क्या हो सकता है? पर, अगर हम जगमोहन के ही रास्ते पर चलते रहे, सिर्फ़ इंद्रप्रस्थ को बचाते और उसके बाद अस्तित्व में आई तमाम चीज़ों को अनदेखा करते चले गए तो यह शहर भी 'मेमेंटो'[39] फ़िल्म के लियोनार्ड शेल्बी जैसा बनकर रह जाएगा। जी हाँ, एक ऐसे शख़्स की तरह जो अपनी नई स्मृतियाँ नहीं रच सकता और इसलिए प्रतिकारी हिंसा के एक कभी न ख़त्म होने वाले सिलसिले में बार-बार उलझते जाने को अभिशप्त हो जाता है। अगर 1947 की दहशत को उस परिधि से पोंछ दिया जाए जहाँ उसके पीड़ितों ने पनाह ली थी तो

क्या हम भी शेल्बी वाली नियति के लिए अभिशप्त नहीं दिखाई देने लगेंगे?

लियोनार्ड शेल्बी के शब्दों में, 'जब मैं वक़्त को महसूस ही नहीं कर सकता तो भला मैं ठीक कैसे हो सकता हूँ।'

अनुवादः योगेन्द्र दत्त

आभार

मैं नारायणी गुप्ता और शाहिद अमीन का आभारी हूँ जिनकी धैर्यभरी सलाह और बीच-बीच में मिली मदद के बिना यह शोध पूरा नहीं हो सकता था। मैं सीएसडीएस के सराय कार्यक्रम का आभारी हूँ जिन्होंने 'शहर पर शोध हेतु छात्रवृत्ति' के जरिए इस शोध का ख़र्चा उठाया। मैं मुदित त्रिवेदी का भी आभारी हूँ जिन्होंने इस पर्चे के पहले मसविदे पर अपनी बहुमूल्य टिप्पणी और सुझाव दिए थे। अक्षय सिंह और सकीना अली का भी मैं आभारी हूँ जिनकी मदद के बिना शायद बहुत कुछ न हो पाता।

संदर्भ

1. मिसाल के तौर पर देखें, अबुल फ़ज़ल, *आईन-ए-अकबरी* (वर्ष 1600); सुभान राय, *खुला सतुल तवारीख़* (वर्ष 1695); एवं सैयद अहमद ख़ान, *असार-उल-सनादीद* (1847). पहले दो स्रोतों के संबंधित उद्धरण *हिस्टॉरिक डेल्ही, ऐन एन्थोलॉजी* सम्पादकः एच. के. कौल दिल्लीः ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1985, पृ. 18-21 में उपलब्ध हैं.
2. लॉर्ड हार्डिंग द्वारा भारत सचिव को भेजा गया नोट, 25 अगस्त 1911, खुशवंत सिंह एवं रघु राय, *दिल्लीः ए पोर्ट्रेट,* दिल्ली : दिल्ली पर्यटन विकास निगम, ऑक्सफ़र्ड युनिवर्सिटी प्रेस, 1983, पृ. 37 में उद्धृत.
3. वही, पृ. 40. यह उद्धरण नई दिल्ली के शिल्पकारों में से एक, हरबर्ट बेकर का है.
4. मौलवी ज़फ़र हसन, पूरक, *मॉन्यूमेंट्स ऑफ़ डेल्ही – लास्टिंग स्प्लेंडर ऑफ़ द ग्रेट मुग़ल्स ऐण्ड अदर्स,* वॉल्यूम-II, दिल्ली जेल 1919; पुनर्प्रकाशन, दिल्लीः आर्यन बुक इंटरनेशनल, 1997, पृ. 95.
5. वही, पृ. 91.
6. स्मारकों का वर्गीकरण ज़फ़र हसन लिस्ट की प्रस्तावना में दिया गया है. इसमें दी गई ज़फ़र हसन लिस्ट-1-मॉन्यूमेंट्स में उन स्मारकों को रखा गया है जिन्हें मौजूदा हालात या पुरातात्त्विक अथवा ऐतिहासिक महत्व के नज़रिये से अच्छी स्थिति में बनाए रखने का निर्देश दिया गया है. इसी ज़फ़र हसन लिस्ट-2-मॉन्यूमेंट्स में उन स्मारकों को रखा गया है जिन्हें और अधिक क्षरण से बचाने के लिए मौजूदा हालत में बनाए रखना ज़रूरी है. इसके लिए उन पर लगी काई या जहाँ-तहाँ उग आए पेड़-पौधों से उनका बचाव करना, दीवारों को नमी से मुक्त रखने का प्रावधान किया गया है. ज़फ़र हसन लिस्ट-3 में उन स्मारकों को रखा गया है जो या तो काफ़ी जीर्ण-शीर्ण हालत में हैं या जिनका विशेष महत्व नहीं है इसलिए या तो उनका संरक्षण असम्भव है या अनावश्यक है.... प्रस्तावना में आगे कहा गया है कि, ...क्योंकि किसी इमारत को श्रेणी तीन में रखा गया है तो इसका मतलब यह नहीं है कि उसे बेवजह ही मटियामेट कर दिया जाए (!)
7. मिशेल फ़ूको, दि *ऑर्केयॉलजी ऑफ़ नॉलेज,* अनुवादः ए. एम. शेरेडन स्मिथ 1972; पुनर्प्रकाशन लंदनः रटलेज, 2002, पृ. 7.
8. बेगम अनीस किदवई, *आज़ादी की छाँव में,* अनुवादः नूर नबी अब्बासी, दिल्लीः नैशनल बुक ट्रस्ट, 2000, पृ. 30. यह किताब उर्दू से अनूदित है और हिंदी में उपलब्ध है.
9. वही, पृ. 34.
10. मुकुल केशवन, *लुकिंग थ्रू ग्लास,* दिल्लीः रविदयाल पब्लिशर्स, 1995, पृ. 361.
11. नारायणी गुप्ता के साथ बातचीत.
12. *डेल्ही गज़ेटियर,* दिल्लीः दिल्ली प्रशासन, 1976, पृ. 130
13. वही, पृ. 136.
14. सैयद अहमद ख़ान, *असार-उल-सनादीद* 1847; पुनर्प्रकाशन, सम्पादकः ख़ालिक़ अंजुम, दिल्लीः उर्दू अकादमी दिल्ली, 1990, पृ. 72.
15. एच.वाई. शारदाप्रसाद एवं ए.के. दामोदरन, सम्पादकः, *सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ जवाहरलाल नेहरू,* खंड 30, दिल्लीः जवाहरलाल नेहरू स्मारक निधि, पृ. 117.
16. अध्यक्ष श्री शांतिलाल मंगलदास के वक्तव्य से, प्रोसिडिंग्स ऑफ़ दि 29थ एन्युअल मीटिंग, फ़ेडरेशन ऑफ़ इंडियन चेम्बर्स ऑफ़ कॉमर्स ऐण्ड इंडस्ट्री (फिक्की), 1956. इस बैठक में नेहरू भी उपस्थित थे.
17. *इंडियन ऑर्केयॉलजी 1954-55 - ए रिव्यू,* पृ. 13-14.
18. प्रसाद एवं दामोदरन, *सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ जवाहरलाल नेहरू,* खंड 30, पृ. 238.
19. उपरोक्त 18 की पाद-टिप्पणी, प्रसाद एवं दामोदरन, *सेलेक्टेड वर्क्स ऑफ़ जवाहरलाल नेहरू,* खंड 30, पृ. 239 में.

20. *इंडियन आर्कियॉलजी 1969-70 - ए रिव्यू (आईएआर),* आर्कियॉलजिकल सर्वे ऑफ़ इंडिया, 1973, पृ. 4-5.
21. वही.
22. *आईएआर 1970-71* एएसआई, 1974, पृ. 8-10.
23. वही.
24. *आईएआर 1971-72* एएसआई, 1975, पृ. 7-8.
25. इसके विपरीत मौर्यकाल और उसके बाद की अवधि के लिहाज़ से ये खुदाइयाँ काफ़ी समृद्ध और फलदायी रही हैं और ऐसा लगता है कि इसके पहले यहाँ नियमित आबादी नहीं थी. यह तथ्य 1847 में सैयद अहमद ख़ान द्वारा उपलब्ध कराए गए लिखित साक्ष्यों से पूरी तरह मेल खाता है. उन्होंने लिखा था कि दिल्ली की स्थापना उसी काल में हुई थी जिस काल में सिकंदर ने भारत पर हमला किया था (ख़ान, *असार,* 74). उन्होंने यह भी कहा था कि पुराना क़िला वही दुर्ग है जिसका अनंगपाल तोमर ने निर्माण करवाया था और दिल्ली सल्तनत के दौर में जिसे क़िला-ए-इंदरपत कहा जाता था. ख़ान के मुताबिक़ तोमर ने इस क़िले के बाहर पत्थर के शेर बनाये थे जो कम से कम 1318 ईस्वी तक अपनी जगह मौजूद थे. 1968-70 की खुदाई में एएसआई ने यहाँ एक दुर्ग की चारदीवारी भी पाई जो 'सम्भवतः तोमरों के काल की होगी' (आईएआर 1969-70).
26. *आईएआर, 1971-72*, पृ. 7-8.
27. *आईएआर, 1972-73* एएसआई, 1978, पृ. 8-9.
28. वही.
29. विलियम डैलरिम्पल, *सिटी ऑफ़ जिन्स,* दिल्लीः हारपर कॉलिंस पब्लिशर्स, 1993, पृ. 330.
30. अक्षय मुकुल, "मिनिस्ट्री डिग्स इनटू एएसआई डिलेज़", *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*, बुधवार, 17 अप्रैल 2002.
31. *दिल्ली गज़ेटियर* दिल्ली प्रशासन, 1976, पृ. 1057-58.
32. *दिल्ली गज़ेटियर*, पृ. 1006.
33. प्रार्थना गहलौत, 'पुराना क़िला इज़ द वर्ल्ड्स गवर्नमेंट', एक्सप्रेस न्यूज़लाइन, *इंडियन एक्सप्रेस,* शनिवार, 26 जुलाई 2003.
34. 'वायलेशन ऐट टूम्बः जगमोहन इंटरव्यू' एक्सप्रेस न्यूज़लाईन, *इंडियन एक्सप्रेस*, बुधवार, 16 जुलाई 2003; तथा 'क़ुतुब्स रेगुलेटेड एरिया इज़ देयर बैकयार्ड', एक्सप्रेस न्यूज़लाईन, *इंडियन एक्सप्रेस*, बृहस्पतिवार, 22 जुलाई 2003.
35. 'जगमोहन इनवाइट्स द पांडवाज़ टू ओल्ड फ़ोर्ट', *टाइम्स ऑफ़ इंडिया*, मंगलवार, 5 अगस्त 2003.
36. वही.
37. डेविड लॉवेन्थल, 'द पास्ट इज़ ए फ़ॉरेन कंट्री', http://www.confectious.net/users/egoodman/2001 classes.html में उद्धृत, 28 अगस्त 2003.
38. वॉल्टर बेंयामिन, *थीसिस ऑन द फ़िलॉसफ़ी ऑफ़ हिस्ट्री,* vii (1940); http://www.tasc.ac.uk/depart/media/staff/ls/WBenjamil/CONCEPT2.html, (29 अक्टूबर 2003).
39. मेमेन्टो, निर्देशक क्रिस्टॉफ़र नोलान, अमेरिका, 2001.